

अनन्तावबोध]

४६, जैन-लक्षणावली

[अनभिगृहीता दृष्टि

ओही जस्स सो अणतोही । × × × अधवाऽवयव-
विणासाणं वाचमो अंतसहो घेतव्वो, ओही मज्जाया
उक्कस्साणतादो पुधभूदा । अन्तश्च अवधिश्च
अन्तावधी, न विद्येते तौ यस्य स अनन्तावधिः ।
अभेदाज्जीवस्यापीयं संज्ञा । अनन्तावधयश्च ते जिना-
श्च अनन्तावधिजिनाः । (धव. पु. ६, पृ. ५१-५२) ।
जिस ज्ञान की अवधि (मर्यादा) उत्कृष्ट अनन्त है,
अर्थात् जो ज्ञान अनन्त वस्तुओं को विषय करता
है, वह अनन्तावधि कहलाता है; ऐसा ज्ञान जिन
जिनों के—कर्मविजेताओं के—होता है उन्हें अनन्ता-
वधिजिन जानना चाहिए ।

अनन्तावबोध—अतीतानागत-वर्तमानाऽनन्तार्थ-व्यं-
जनपर्यायात्मकसूक्ष्मान्तरित-दूरार्थेषु अनन्तेषु अप्रति-
बद्धप्रवृत्तिरमलः केवलाख्योऽनन्तावबोधः । (लघुस.
सि. पृ. ११६) ।

त्रिकालवर्ती समस्त द्रव्यों की अनन्त अर्थपर्यायों
और व्यंजनपर्यायों को, तथा सूक्ष्म, अन्तरित और
दूरवर्ती पदार्थों को निर्बाधरूप से जानने वाला
निर्मल केवलज्ञान अनन्तावबोध कहलाता है ।

अनन्तोपभोग—१. निरवशेषस्योपभोगान्तरायस्य
प्रलयात् प्रादुर्भूतोऽनन्त उपभोगः क्षायिकः । (स.
सि. २-४) । २. निरवशेषोपभोगान्तरायप्रलयाद-
नन्तोपभोगः क्षायिकः । (त. वा. २, ४, ५) ।

उपभोगान्तराय के निर्मूल विनष्ट हो जाने पर जो
उपभोग प्रादुर्भूत होता है उसका नाम अनन्तोप-
भोग है ।

अनपनीतत्व—अनपनीतत्वं कारक-काल-वचन-लि-
ङ्गादिव्यत्ययरूपवचनदोषापेतता । (सम्भवा. अभय.
वृ. ३५; रायप. मलय. वृ. पृ. १७) ।

कारक, काल, वचन और लिंग आदि के व्यत्ययरूप
वचनदोष से रहित वाक्यप्रयोग को अनपनीतत्व
कहते हैं ।

अनपवर्तन—अनपवर्तनं यथावस्थितिकं पुरा बद्धं
तस्य तावत्स्थितिकस्यैवानुभवनम् । (संग्रहणी वृ.
२५६) ।

पूर्व में बांधी हुई कर्मस्थिति का ह्रास न होकर
उतनी ही स्थितिरूप कर्म का अनुभवन करने को
अनपवर्तन कहते हैं ।

अनपवर्तनीय—अनपवर्तनीयं पुनस्तावत्कालस्थि-

ल. ७

त्येव, न ह्रासमायाति स्वकालावधेरारात् । × ×
× एवं हि तीव्रपरिणामप्रयोगबीजजनितशक्ति
तदायुरात्तमतीतजन्मनि न शक्यमन्तराल एवाव-
च्छेत्तुमित्यनपवर्तनीयमुच्यते । (त. भा. सिद्ध. वृ.
२-५१) ।

आयु कर्म की जितनी स्थिति बांधी गई है उतनी ही
स्थिति का वेबन करना व अपने काल की अवधि
के पूर्व उसका विघात नहीं होना, इसका नाम
उसकी अनपवर्तनीयता है । अभिप्राय यह है कि
अनपवर्तनीय आयु वह कही जाती है जिसका
विघात पूर्व जन्म में बांधी गई स्थिति के पूर्व किसी
भी प्रकार से न हो सके ।

अनभि(धि)गतचारित्रार्थ—अन्तश्चारित्रमोहक्ष-
योपशमसद्भावे सति बाह्योपदेशनिमित्तविरतिपरि-
णामा अनभि(धि)गतचारित्रार्थः । (त. वर. ३,
३६, २) ।

अन्तरंग में चारित्रमोहनीय कर्म का क्षयोपशम
होने पर और बहिरंग में गुरु के उपदेशादि का
निमित्त मिलने पर जो चारित्र रूप परिणाम से
युक्त हुए हैं उन्हें अनभिगतचारित्रार्थ कहते हैं ।

अनभिगृहीत मिथ्यात्व—१. न अभिगृहीतम् अन-
भिगृहीतम्, यथैक-द्वि-त्रि-चतुरिन्द्रियैर्भद्रकैश्च । (पंच-
सं. स्वो. वृ. ४-२) । २. परोपदेशं विनापि मिथ्या-
त्वोदयादुपजायते यदश्रद्धानं तदनभिगृहीतं मिथ्या-
त्वम् । (भ. आ. विजयो. टी. ५६) । ३. अनभि-
गृहीतं परोपदेशं विनापि मिथ्यात्वोदयाज्जातम् ।
भ. आ. मूला. टी. ५६) ।

२ परोपदेश के बिना ही मिथ्यात्व कर्म के उदय से
जो तत्त्वों का अश्रद्धान उत्पन्न होता है, उसे अन-
भिगृहीत मिथ्यात्व कहते हैं ।

अनभिगृहीता क्रिया—अनभिगृहीताऽनभ्युपगत-
देवताविशेषाणां तत्त्वार्थश्रद्धानम् । (त. भा. सिद्ध.
वृ. ६-६) ।

देवताविशेष को स्वीकार न करने वालों के तत्त्वा-
र्थश्रद्धान को—विपरीत तत्त्वश्रद्धा को—अनभि-
गृहीता क्रिया कहते हैं ।

अनभिगृहीता दृष्टि—सर्वप्रवचनेष्वेव साधुदृष्टि-
रनभिगृहीतमिथ्यादृष्टिः । सर्वमेव युक्त्युपपन्नमयु-

अनभिगृहीता भाषा]

५०, जैन-लक्षणावली

[अनर्थदण्डविरति

वित्तकं वा समतया मन्यते मोदधात् । (त. भा. सि. वृ. ७-१८) ।

जो सभी मत-मतान्तरों को समीचीन मानता हुआ सयुक्तिक व युक्तिशून्य कथन को मूर्खतावश समान मानता है, उसकी दृष्टि (अज्ञा) को अनभिगृहीता दृष्टि कहा जाता है ।

अनभिगृहीता भाषा—१. अनभिगृहीता भाषा अर्थमनभिगृह्य या प्रोच्यते दित्थादिवदिति । (दशवै. हरि. वृ. नि. ७-२७७); आब. हरि. वृ. म. हे. टि. पृ. ७६) । २. सा होइ अणभिगृहिया जत्थ अणगेसु पुट्टकज्जेसु । एगयराणवहारणमहवा दिच्छाडयं वयणं । (भाषार. ७७); यत्र यस्यां अनेकेषु पृष्ठकार्येषु मध्य एकतरस्यानवधारणमनिश्चयो भवति—एता-वत्सु कार्येषु मध्ये किं करोमीति प्रश्नयेत् प्रतिभासते, तत्कुर्वति प्रतिवचने कस्यापि शृङ्गग्राहिकयाऽनिर्धारणात् सा अनभिगृहीता भवति । (भाषार. टी. ७७) ।

१ अर्थ को नहीं ग्रहण करके बोली गई भाषा—जैसे दित्थ-उदित्थादि—को अनभिगृहीता भाषा कहते हैं । २ अथवा एक साथ पूछे गये अनेक कार्यों में से किसी एक का भी निश्चय न करके उत्तर देने को अनभिगृहीता भाषा कहते हैं ।

अनभिग्रहा भाषा—अनभिग्रहा यत्र न प्रतिनियताथविधारणम् । (प्रज्ञाप. मलय. वृ. ११-१६५) । प्रतिनियत अर्थ के निश्चय से रहित भाषा को अनभिग्रहा भाषा कहते हैं ।

अनभिप्रेत (अणभिपेग्र)— $\times \times \times$ अणभिपेग्रो अ पडिलोमो ॥ (उत्तरा. नि. १-४३) ।

अपने लिए अनिष्ट या प्रतिकूल वस्तु को अनभिप्रेत कहते हैं ।

अनभियोग्य देव—तेभ्यो (अभियोगेभ्यो)ऽन्ये कित्विषिकादयोऽनुत्तमा देवा उत्तमाश्च पारिषदादयोऽनभियोग्याः । (जयध. पत्र ७६४) ।

अभियोग्य देवों के अतिरिक्त जो कित्विषिक आदि अथम और पारिषद आदि उत्तम जाति के देव हैं वे अनभियोग्य देव कहलाते हैं ।

अनभिसन्धिज वीर्य (अणभिसंधिजवीर्य)—

१. असंवेद्या खल-रसातिपरिणामणा सत्ती अणभिसंधिजं वीरितं । (कर्मप्र. चू. गा. १-३) । २. इतर-दनभिसन्धिजम्—यद् भुक्तस्याहारस्य धातु-मलत्वरूपपरिणामापादनकारणमेकेन्द्रियाणां वा तत्तत्क्रिया-

निबन्धनम् । (कर्मप्र. मलय. वृ. १-३, पृ. २०) ।

२ उपभुक्त आहार को सप्त धातु और मल-मूत्रादि रूप परिणमाने वाली शक्ति को अनभिसन्धिज वीर्य कहते हैं । अथवा, जो एकेन्द्रिय जीवों की विविध क्रिया का कारण हो उसे अनभिसन्धिज वीर्य समझना चाहिए ।

अनभिहित—अनभिहितं स्वसिद्धान्तेऽनुपदिष्टम् । (आब. मलय. वृ. नि. ८८२) ।

अपने सिद्धान्त में अनुपदिष्ट या अकथित तत्त्व को अनभिहित कहते हैं ।

अनर्थक्रिया—१. तद्विपरीता (अर्थदण्डरूपार्थक्रिया-विपरीता) अनर्थक्रिया । (गु. गु. षट्. स्वो. वृ. पृ. ४१) । २. तदर्थाभावे तद्ग्रहणमनर्थार्थ क्रिया । (धर्मसं. मान. स्वो. वृ. ३, २७, ८२) ।

प्रयोजन रहित क्रिया को अनर्थक्रिया कहते हैं ।

अनर्थदण्ड—१. कज्जं किं पि ण साहदि णिच्चं पावं करेदि जो अत्थो । सो खलु हवे अणत्थो $\times \times \times$ ॥ (कातिके. ३४३) । २. उपकारात्यये पापादान-

निमित्तमनर्थदण्डः । (त. वा. ७, २१, ४; त. श्लो. ७-२१) । ३. तद्विपरीतोऽनर्थदण्डः प्रयोजननिर-

पेक्षः, अनर्थः अप्रयोजनमनुपयोगो निष्कारणतेति पर्यायाः । विनैव कारणेन भूतानि दण्डयति, तथा

कुठारेण प्रहृष्टस्तस्करन्ध-शाखादिषु प्रहरति, कुक-

लास-पिपीलिकादीन् व्यापादयति कृतसङ्कल्पः, न च तद्व्यापादने किञ्चिदतिशयोपकारि प्रयोजनं

येन विना गार्हस्थ्यं प्रतिपालयितुं न शक्यते । (आब. हरि. वृ. ६, ८३; त. भा. सि. वृ. ७-१६) । ४. प्रयोजनं विना पापादानहेतुर-

नर्थदण्डः । (चा. सा. पृ. ६) । ५. शरीराद्यर्थ-

विकलो यो दण्डः क्रियते जनैः सोऽनर्थदण्डः । (धर्म-सं. मान. स्वो. वृ. २, ३५, ८१) ।

१ जिस अर्थ से—क्रिया से—कार्य तो कुछ भी सिद्ध नहीं होता, किन्तु सदा पाप ही किया जाता है वह अनर्थदण्ड कहलाता है ।

अनर्थदण्डविरति—१. अभ्यन्तरं दिगवधेरपाधि-

केभ्यः सपापयोगेभ्यः । विरमणमनर्थदण्डव्रतं विदु-व्रतधराग्रण्यः ॥ (रत्नक. ३-२८) । २. असत्यु-

पकारे पापादानहेतुरनर्थदण्डः, ततो विरतिरनर्थ-

दण्डविरतिः । (स. सि. ७-२१) । ३. उपकारात्यये पापादाननिमित्तमनर्थदण्डः ॥४॥ असत्युपकारे पापा-